आदर्श दल विहीन राजनीतिक व्यवस्था : गाँधी सत्याग्रह के विशेष संदर्भ में

डॉ. प्रियंका चक्रवर्ती
सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान
षासकीय स्नातक महाविद्यालय नैनपुर
जिला –मण्डला (म0प्र0)

'सत्याग्रह' के रूप में गांधी ने सामजिक और राजनीतिक प्रतिरोध का नया औजार भारत को दिया। इस सत्याग्रह के जरिए उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में नई जान फूंक दी। जो 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' सिर्फ प्रस्ताव पारित करने वाली जमात थी उसे गांधी ने जन आंदोलन में बदल दिया। उनके 'सत्याग्रह' की प्रथम प्रयोगशाला चंपारण है जिसका 2017 में शताब्दी वर्ष पूर्ण हुआ है। गांधी के सपनों का भारत वैकल्पिक सभ्यता का भारत था जो अतिशय भोग को नकारता था और अतिशय मशीनीकृत दुनिया के समानांतर श्रम आधारित सभ्यता को महत्त्व देता था। गांधी ने साम्राज्यवादी ताकतों से लड़ने का अहिंसक तरीका खोजा और व्यापक प्रयोग किया। वह अनोखा हथियार अब सम्पूर्ण मानवता की थाती है। गांधी उस हथियार से समाज परिवर्तन की लड़ाई कैसे लड़ते, इसके कई संकेत उनके विचारों में मिलते हैं। विदेशी शोषण का अहिंसक मुकाबला कैसे हो सकता है। इसका स्वरूप हमें गांधी द्वारा स्वाधीनता के लिए चलाए गए प्रमुख आन्दोलनों में मिलता है।[1] गांधी ने अहिंसा का व्यवहारिक प्रयोग दक्षिण अफ्रीका एवं भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में किया था। इन आन्दोलनों को अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचाने में गांधीय अहिंसा की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। सर्वप्रथम दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह का सफल प्रयोग करने के बाद गांधी 1915 में भारत लौटे। भारत में आकर उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन देश सेवा के प्रति समर्पित करने का निश्चय किया।

चम्पारन

मोहनदास करमचंद गांधी का 1917 का चंपारण सत्याग्रह न सिर्फ भारतीय इतिहास बल्कि विश्व इतिहास की एक ऐसी घटना है, जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को खुली चुनौती दी थी। वे दस अप्रैल, 1917 को जब बिहार आए तो उनका एक मात्र मकसद चंपारण के किसानों की समस्याओं को समझना, उसका निदान और नील के धब्बों को मिटाना था। एक स्थानीय पीड़ित किसान राजकुमार शुक्ल ने कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन (1916) में अंग्रेजों द्वारा जबरन नील की खेती कराए जाने के संदर्भ में शिकायत की थी। शुक्ल का आग्रह था कि गांधीजी इस आंदोलन का नेतृत्व करें। गांधीजी ने इस समस्या को न सिर्फ गंभीरतापूर्वक समझा, बल्कि इस दिशा में आगे भी बढ़े। बिहार में चंपारण जिले को ये सौभाग्य प्राप्त है कि दक्षिण अफ्रिका से वापस आकर महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह आन्दोलन का प्रारम्भ यहीं से किया। चंपारण सत्याग्रह में गाँधी जी को सफलता भी प्राप्त हुई। शांतिपूर्ण जनविरोध के माध्यम से सरकार को सीमित मांगें स्वीकार करने पर सहमत कर लेना एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। सत्याग्रह का भारत के राष्ट्रीय स्तर पर यह पहला प्रयोग इस लिहाज से काफी सफल रहा। इसके बाद नील की खेती जमींदारों के लिए लाभदायक नहीं रही और शीघ्र ही चंपारण से नील कोठियों के मालिकों का पलायन प्रारंभ हो गया।

शरतीय कांग्रेस का 31 वाँ अधिवेषन दिसम्बर 1916 में लखनऊ में हुआ जिसमे देषभर के लगभग 2300 प्रतिनिधियों ने शग लिया था इसमें बिहार के राजनीतिक एवं किसान नेता राजकुमार षुक्ल ने भी शग लिया था इस अधिवेषन में दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए जाने वाले थे प्रथम, पटना विष्वविद्यालय के विधेयक पर, द्वितीय चम्पारन के नीलहे व उनके किसानों से सम्बन्ध पर। राजकुमार शुक्ल जिन्हें व्यक्तिगत तौर पर नीलहे के अत्याचारों का अनुभव

था उनके सम्बन्ध में गांधी ने अपनी आत्मकथा में कहा है कि, ''शुक्ल बिहार के हजारों लोगों पर से नील के कलंक को धो देने को कृत संकल्प थे।'' 12 अप्रैल, 1917 को गांधी द्वारा तिरहुत प्रमण्डल के आयुक्त एल.एफ.मार्सहेड को भी अपने चम्पारन आने के उद्देश्य को बताते हुए भी लिखा। इस पत्र में गांधी ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि वह समस्या के तह में जाकर ही रहेंगे। चाहे स्थानीय प्रशासन उनका सहयोग करे या न करें, साथ ही उनका आन्दोलन पूर्ण पारदर्शी रहेगा। तदोपरान्त जे.एम. विल्सन ने गांधी को सूचित किया कि उन्हें, प्लांटर्सो के मामलों में टांग नहीं अडाना चाहिए। गांधी ने विनम्रतापूर्वक जवाब दिया कि वे अपने आपको बाहर का आदमी नहीं समझते और यदि रैयत चाहती है तो उनकी स्थिति की जाँच करने का उनका पूरा अधिकार है।[2] 13 अप्रैल को ही जब गांधी आयुक्त से मिलने गये तो उन पर धौंस जमाते हुए उन्हें तिरहुत से वापस चले जाने को कहा। इस पर गांधी का जवाब था कि वह बिहार के लोगों के आमंत्रण पर यहां आए हैं। 21 अप्रैल को मुकदमा समाप्ति के बाद 22 अप्रैल को गांधी ने मोतिहारी से बेतिया प्रस्थान किया शाम 5:00 बजे बेतिया पहुंचे तो बड़ी संख्या में लोगों ने स्टेशन पर उन पर फूल बरसाये। उनके साथ अनेक साथी, जिनमें ब्रजकिशोर, राजेन्द्र प्रसाद, अनुग्रह, शम्भू, धरणी, रामनौमी आदि भी थे। तत्पश्चात् गांधी अपने उक्त साथियों के साथ या इनमें से किसी के साथ आस–पास के गांव जाने लगे। 24 अप्रैल को वे ब्रजकिशोर के साथ लौकरिया गाँव गए, वहाँ की रैयतों ने अपने दुःख–दर्द गांधी को खुलकर सुनाए, अगले दिन वे कूरिया कोठी के गाँव छपरा गए। इस इलाके रैयतों की दरिद्रता देखकर गांधी का हृदय पिघल गया।[3] ''चम्पारन के संबंध में गांधी ने लिखा है कि भारत के किसान बहुत ही गरीब स्थिति में थे। हजारों की तादाद् में लोगों को भर पेट खाना भी नहीं मिलता था। चम्पारन में उन्होंने यह देखा कि हजारों काश्तकार लोग निलहे के गुलाम थे और इस गुलामी से वो निकलने की आशा भी नहीं रखते थे।'' इस प्रकार गांधी ने गाँव–गाँव घूमकर हजारों किसानों के बयान दर्ज किए और चम्पारन समस्या को भलि प्रकार से समझने के पश्चात् विलियम मौड (वाइसराय के एक्जक्यूटिव कौंसिल के उपाध्यक्ष एवं सदस्य) के सुझावानुसार गांधी ने चम्पारन के किसानों की हालत संबंधी अपनी जाँच रिपोर्ट बिहार–उड़ीसा के मुख्य सचिव को भिजवाई।[4] गांधी की 13 मई की उक्त रिपोर्ट पाने पर गवर्नर ने जिला मजिस्ट्रेट अनुमंडलाधिकारियों, बन्दोबस्त पदाधिकारियों और प्लांटर्सो को 30 जून तक अपनी–अपनी रिपोर्ट दाखिल करने को कहा। जिसमें गांधी की मई रिपोर्ट को सही पाया गया। इस प्रकार गांधी ने चम्पारन वासियों मे एक ऐसी व्यवस्था से मुक्त होने की आशा का संचार किया, जो उनके जीवन रस का शोषण कर लेती थी तथा उन्हें एक अभिशप्त जिन्दगी बिताने को उन्हें बाध्य करती थी। गांधी के इन्ही प्रयासों के फलस्वरूप 4 मार्च, 1918 को चम्पारन कृषि कानून पारित हुआ, जिसमें समिति की अधिकांश अनुशंसाओं को समाहित किया गया था। अन्ततः चम्पारन कृषि कानून के अस्तित्व में आने से चम्पारन के किसान शोषित जीवन से मुक्त हुए।[5]

चंपारन के इस गांधी अभियान से अंग्रेज सरकार परेशान हो उठी। सारे भारत का ध्यान अब चंपारन पर था। सरकार ने मजबूर होकर एक जाँच आयोग नियुक्त किया, गांधीजी को भी इसका सदस्य बनाया गया।। परिणाम सामने था। कानून बनाकर सभी गलत प्रथाओं को समाप्त कर दिया गया। जमींदार के लाभ के लिए नील की खेती करने वाले किसान अब अपने जमीन के मालिक बने। गांधीजी ने भारत में सत्याग्रह की पहली विजय का शंख फूँका। चम्पारन ही भारत में सत्याग्रह की जन्म स्थली बना।

खेड़ा सत्याग्रह

खेड़ा किसान आन्दोलन व उसमें गांधी के अहिंसाधारित प्रयासों को समझने से पूर्व हमें ब्रिटिशकालीन खेड़ा की स्थिति को जान लेना आवश्यक है। ब्रिटिश काल में भारत के गुजरात को छः भागों में बांट रखा था। कच्छ, उत्तरी गुजरात, सेन्ट्ल गुजरात, ईस्ट्न हिल्स ट्रेक्टस् और दक्षिणी गुजरात।[6] दक्षिणी गुजरात में पाँच ब्रिटिश जिले निर्धारित थे, अहमदाबाद, खेड़ा, पंचमहल, भरोंच, और सूरत। ब्रिटिशकाल में 1947 के पहले खेड़ा जिला माही और साबरमती नदी के बीच के क्षेत्र में स्थित रहा। यह चरोत्तर क्षेत्र के नाम से भी अधिक जाना जाता था और कई छोटे–बड़े आन्दोलन इसी क्षेत्र में हुए।[7] लगभग 12 वीं शताब्दी में उत्तरी गुजरात से कनबी काश्तकार, जो कि पाटीदार के नाम से जाने गए, इस वनीय क्षेत्र में आये और उन्होंने जंगल काटकर इस भू–भाग को कृषि योग्य बनाया।[8] कनबी काश्तकारों ने इस क्षेत्र को एक फलदार बगीचों वाले क्षेत्र के रूप में विकसित कर लिया था। जिसकी खूबसूरती का बखान जेक्स फोरब्स ने अपनी पुस्तक में भी किया है।

खेड़ा आन्दोलन के औचित्य को समझने के लिए यह ध्यान रखना जरूरी है कि भारत में ब्रिटिश शासन में कई वर्षों की अवधि के लिए लगान नियत करने की प्रणाली जानबूझकर अपनाई गई थी। समय–समय पर लगान नियत करने के पीछे सिद्धांत यह था कि, ''उसे इस प्रकार निश्चित किया गया है कि सामान्य रूप से उतने परिवर्तन की गुंजाइश, मौसम के परिवर्तनों का जितना अनुमानित लगान निर्धारक अधिकारी लगा सकते है, रख ली गई थी। किन्तु चाहे फसल बुरी हो या अच्छी, सिद्धांततः लगान हर साल चुकता होना चाहिए। इसलिए भारत सरकार ने यह स्वीकार करते हुए भी कि, इस प्रस्ताव में जिस प्रणाली का अनुमोदन किया गया है, उसमें लगान वसूल करते समय किसी प्रकार की ढील–ढाल या असावधानी नहीं होनी चाहिए। वह यह भी नहीं चाहती कि लगान को मुल्तवी और माफ करने की प्रस्तावित प्रणाली, ''राजस्व प्रशासन का नित्य अंग'' ही बन जाए। वास्तव में इसमें किसानों को छूट के रूप में मान्यता दी गई थी न कि अधिकार के रूप में। यह छूट ऐसे अपवादस्वरूप कठिन संकटों के लिए थी, जिनमें बन्दोबस्त के अनुसार किये गए समझौते में ढिलाई करना सरल और जरूरी लगे। यह भी कहा गया कि, ''किसान से यह उम्मीद करना कि वह बुरी और अच्छी फसलों के साधारण उतार–चढ़ाव को बरदास्त कर लेगा, ठीक और उचित ही है।'' तथा इस प्रकार के अधिकार परिस्थितियों के अनुसार निर्णय करने के लिए जिला कलेक्टर्स के अधिकार क्षेत्र में छोड दिए गए। इस समस्या को गोकुलदास कहानदास पारेख सदस्य, बम्बई विधान परिषद् सदस्य ने भी विधान परिषद् में उठाकर समाधान कराने का प्रयास किया लेकिन परिणाम नकारात्मक ही रहे। खेड़ा जिले में 1911 की जनगणना के अनुसार कुल जनसंख्या के लगभग 61 प्रतिशत लोग कृषि पर आधारित जीवन जी रहे थे।

ऐसे में दक्षिण अफ्रिका और चम्पारन में अपने अहिंसाधारित प्रयासों से लोगों को न्याय दिला चुके गांधी का, जो कि गुजरात में अहमदाबाद के पास कोचरबा में एक आश्रम बनाकर अपना एक स्थायी आवास बना चुके थे। ऐसे में जब गुजरात में ही खेड़ा जिले के किसान अपने आपको ठगा सा महसूस कर रहे थे। गांधी का उनके कष्टों में साथ आना स्वभाविक था। अतः गांधी ने खेड़ा के किसानों की माँग को फरवरी, 1918 में अपने हाथ में ले लिया। इसके साथ ही विलम्ब न करते हुए खेड़ा जिले के किसानों की दुर्दशा दूर करने के लिए 5 फरवरी को बम्बई प्रान्त के गवर्नर के निजी सचिव को एक पत्र लिखा।[9] जिसमें उन्होंने खेड़ा जिले के किसानों पर लगान के लिए स्थानीय अधिकारियों द्वारा अनुचित दबाव डाले जाने का जिक्र किया। उन्होंने एक पाँच सदस्यीय स्वतंत्र समिति बनाने का भी सुझाव दिया। इस समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने हेरल्ड मैन का नाम सुझाया।

गांधी का जाँच समिति बनाने का उद्देश्य यह था कि इस वर्ष जितनी फसल हुई है और साधारण वर्ष में कितनी फसल होती है, किसानों से यह पूछकर विश्वसनीय तथ्य प्राप्त किए जा सकते है, उनका यह भी विचार था कि किसी गॉव की औसत फसल का निर्धारण करने के लिए रबी की फसल का ही नहीं वरन् कपास की फसल को भी नहीं गिना जाना चाहिए। इसके साथ ही गांधी ने एक पत्र उत्तरी क्षेत्र के कमिश्नर एफ.जी. प्रैट को भी लिखा, जिसमें उन्होंने लिखा कि मुझे कपडगंज ताल्लुके के मामलातदार के हस्ताक्षर से जारी किए गए कुछ नोटिस अभी दिखाए गए हैं, जिनमें लिखा है कि यदि अधिसूचित लोग 11 फरवरी या उससे पूर्व नोटिस में बताई गई बकाया राशि का भुगतान नहीं कर देते, तो सरकार नोटिस में उल्लेखित जमीनों के प्लॉट जब्त कर लेगी। जारी किए गए नोटिसों पर 2 तारीख अंकित हैं। मैंने उनमें से अधिकांश लोगों को देखा है कि वे सब तरह से इज्जतदार लगते हैं और जिसे वह अपना अधिकार समझते हैं, उसी के लिए लड़ रहें है। गांधी 16 फरवरी 1918 को अपने सहयोगी दल के साथ नडियाद रवाना हो गए और वहां कुछ गाँवों का दौरा करने व ठौस प्रमाण इक्टठा करने के बाद वे 21 फरवरी को खेड़ा जिले के जिलाधीश घोषाल से मिले। लेकिन बार–बार इस प्रकार के प्रयासों से अधिक सफलता नहीं मिलने पर गांधी को अपने अचूक अस्त्र 'अहिंसात्मक प्रतिरोध' का एक और प्रयोग करने पर मजबूर होना पड़ा।

इस सम्बन्ध में गांधी ने लिखा है कि, ''हम जानते हैं कि हमारे गाँवों की फसल चार आने से कम हुई है, इस कारण हमने सरकार से प्रार्थना की, कि वह लगान वसूली का काम अगले वर्ष तक स्थगित रखे, लेकिन फिर भी वह स्थगित नहीं किया गया। अतः हम किसान लोग यह प्रतिज्ञा करतें हैं कि हम इस साल का पूरा या बाकी रहा सरकारी लगान नहीं देंगे, पर उसे वसूल करने के लिए सरकार जो भी कानूनी कार्यवाही करना चाहेगी, हम करने देंगे और उससे होने वाले दुःख–दर्दों को भी सहन करेंगे। यदि हमारी जमीन खालसा की गई तो हम उसे खालसा भी होने देंगे, पर अपने हाथों पैसा जमा करके हम झूठे नहीं ठहरेंगे और स्वाभिमान नहीं खोएगें। अगर सरकार बाकी बची हुई सब जगहों में दूसरी किस्त की वसूली स्थगित रखें तो, हम में से जो लोग जमा करा सकते है वे पूरा अथवा बाकी रहा हुआ लगान जमा कराने को तैयार हैं हममें से जो लोग लगान जमा करा सकते हैं उनके लगान जमा न कराने का कारण यह है कि अगर समर्थ लोग करा दे तो असमर्थ लोग घबराहट में पड़कर अपनी कोई भी चीज बेचकर या कर्ज करके लगान जमा करा देंगे और दुःख उठाएगें। हमारी यह मान्यता है कि ऐसी स्थिति में गरिबों की रक्षा करना समर्थ लोगों का कर्त्तव्य है।'' विपिनचन्द्र ने अपनी पुस्तक, ''भारत का स्वतंत्रता संघर्ष'' में लिखा है कि इस आन्दोलन मे महत्वपूर्ण भूमिका गुजरात सभा ने निभाई, उस वर्ष गांधी इसके अध्यक्ष थे। अपील और याचिकाओं का जब कोई असर नहीं पड़ा तो गांधी ने किसानों से कहा कि लगान मत दो और सरकार के दमनकारी आदेश के खिलाफ जुझारु संघर्ष करो। सरकार को बता दो कि वह नागरिकों की राय के बिना हुकूमत नहीं चला सकती। खेड़ा जिले के युवा वकील वल्लभ भाई पटेल, इन्दू लाल याज्ञिक, विट्ठल भाई पटेल और अनुसूइया साराभाई तथा अन्य अनेक युवाओं ने गांधी के साथ गांव का दौरा किया। किसानों ने संघर्ष की अपील की। सरकार लगान न देने वाले किसानों की सम्पत्ति कुर्क कर रही थी उनके मवेशियों को हांके ले जा रही थी। गांधी ने किसानों को लगान न देने की शपथ दिलाई, जो किसान लगान देने की स्थिति में थे उन्हें भी मना किया गया। तर्क दिया गया कि यदि अमीर किसान लगान देगा तो गरीब किसानों पर भी लगान देने का दबाव पड़ेगा और या तो वे कर्ज लेंगे या फिर अपनी सम्पत्ति बेचने पर मजबूर हो जाएगें। गांधी ने कहा है कि सरकार गरीब किसानों का लगान माफ कर देती है तो जो लोग लगान दे सकते हैं वे स्वेच्छा से पूरा लगान दे देंगे।[10]

''इसमें कार्यवाही करते हुए अंग्रेजी सरकार ने मोहन लाल पाण्ड्या और उनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया, इस गिरफ्तारी से किसानों का उत्साह बढ़ा। किन्तु लगभग चार माह बाद जब सरकार ने देखा कि लोग मान नहीं रहे हैं और सरकार की कार्यवाही से आन्दोलनकारियों का आत्म–विश्वास बढता जा रहा है, आन्दोलनकारी सरकार के दण्ड को सहर्ष स्वीकार करते हुए आन्दोलन को आगे बढ़ाते जा रहे थे तो आखिर में सरकार झुक गई और उसने गांधी की शर्ते स्वीकार कर ली कि, ''सम्पन्न किसान लगान अदा कर दो गरिबों को पूरी माफी मिल जाएगी।''[11] खेड़ा के किसान और संघर्ष करने की स्थिति में नहीं थे, क्योंकि वे पहले से ही प्लेग, मंहगाई, सूखे की मार से त्रस्त थे। इसी बीच गांधी को पता चला कि सरकार ने अधिकारियों को गुप्त निर्देश दिया है कि लगान उन्ही से वसूला जाए जो देने की स्थिति में हैं इस प्रकार गांधी का मकसद पूरा हो गया और आन्दोलन समाप्त कर दिया गया।[12]

निष्कर्षतः 'सत्याग्रह' के रूप में गांधी ने सामजिक और राजनीतिक प्रतिरोध का नया औजार भारत को दिया। इस सत्याग्रह के जरिए उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में नई जान फूंक दी। जो इंडियन नेशनल कांग्रेस सिर्फ प्रस्ताव पारित करने वाली जमात थी, उसे गांधी ने जन आंदोलन में बदल दिया। गांधी का मानना था कि जो भी नीति बने, यह ध्यान में रखा जाए कि समाज के सबसे कमजोर आदमी पर उसका क्या असर होगा। राजनीति की जगह गांधी की यह लोकनीति थी। कहने की जरूरत नहीं कि हमारी वर्तमान राजनीति की चिंता के केंद्र में समाज का वह आखिरी आदमी नहीं है जो गांधी की लोकनीति में पहला स्थान रखता है। हमारी विकास नीति अब आखिरी व्यक्ति को ध्यान में रख कर नहीं बनती, पूंजीपतियों को ध्यान में रख कर बनती है। इस कारण गैर–बराबरी की खाई और चौड़ी होती गई है। इस विकास नीति से उपजा हुआ जो मध्यवर्ग है वह समाज की चिंता से कटा हुआ मध्यवर्ग है। गांधी ने 'हिंद स्वराज' में कहा था कि यह धरती दुनिया के सभी लोगों की जरूरतें पूरी करने के लिए काफी है, लेकिन एक लालची व्यक्ति के लिए छोटी है। उस पृथ्वी का दोहन जब हम अपनी जरूरत के लिए नहीं, लालच के लिए कर रहे हैं और संकट को आमंत्रित कर रहे हैं, तब जो व्यक्ति सबसे पहले याद आता है वह गांधी हैं। गांधी अपने घर की खिड़कियां खुली रखना चाहते थे ताकि बाहर की हवा आ सके, लेकिन इतनी नहीं कि बाहर की आंधी उसे उड़ा ले जाए। नई आर्थिक नीति के समय में हमने खिड़कियां ही नहीं, सारे दरवाजे भी खोल रखे हैं; फल यह है कि बाहर से आई विकास की आंधी हमारी परंपरा और संस्कार समेत घर की सारी वस्तुओं को उड़ाए लिये जा रही है। गांधी ऐसे समय में बरबस याद आते हैं, और याद आता है उनका स्वदेशी का अभियान।

सन्दर्भ

1.कुमार, प्रशान्त, ''तिब्बत, भारत और गांधी परम्परा'', गांधी मार्ग, अहिंसा संस्कृति का द्वैमासिक, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, वर्ष 55, अंक 4, जुलाई–अगस्त 2013, पृ. 17

2.दत्त, कालिकिकंर, ''बिहार में स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास'', बिहारी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृ. 209

3.लहीरी, अबानी, ''द पिजेन्ट एण्ड इण्डियन फ्रीडम मूवमेन्ट'', वी.वी. गिरि नेशनल लेबर इन्स्टीट्यूट, नोयडा, 2001, पृ. 101

4.भार्गव, नरेश एवं गुप्ता, श्यामप्रकाश, ''गांधी एवं किसान आन्दोलन'', गीतांजली प्रकाशक, जयपुर, 2009, पृ. 39

5.भार्गव, नरेश एवं गुप्ता, श्यामप्रकाश, ''गांधी एवं किसान आन्दोलन'', गीतांजली प्रकाशक, जयपुर, 2009, पृ. 51

6.डेविड हार्डिमन, ''पीजेन्ट नेशनालिटिज ऑफ गुजरात'', ऑक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1981, पृ. 257

7.भार्गव, नरेश एवं गुप्ता, श्यामप्रकाश, ''गांधी एवं किसान आन्दोलन'', गीतांजली प्रकाशक, जयपुर, 2009, पृ. 58–59

8.लहीरी, अबानी, ''द पिजेन्ट एण्ड इण्डियन फ्रीडम मूवमेन्ट'', वी.वी. गिरि नेशनल लेबर इन्स्टीट्यूट, नोयडा, 2001, पृ. 98

9.गांधी, एम.के., ''सम्पूर्ण गांधी वांगमय'', प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1985, खण्ड–16, पृ. 554

10.विपिनचन्द्र, ''भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष'', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली वि.वि., दिल्ली, 1996, पृ. 131

11.राज्य शास्त्र समीक्षा, ''स्वाधीनता आन्दोलन में बुद्धिजीवियों की भूमिका'', वर्ष 47, अंक 1, राज. विज्ञान विभाग, राज.वि. वि., जयपुर, जनवरी 1987, पृ. 134

12.कुमार, प्रभात, ''स्वतन्त्रता संग्राम और गांधी का सत्याग्रह'', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1994, पृ. 30

TECHNIX INTERNATIONAL JOURNAL FOR ENGINEERING RESEARCH
TIJER
OPEN ACCESS JOURNAL